

आधुनिक युग और धर्म

डॉ० बशिष्ठ नारायण सिन्हा

दर्शन विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी-२

आधुनिक युग को प्रायः हम इन नामों से सम्बोधित करते हैं—‘विज्ञान का युग’, ‘समाजवाद का युग’ तथा ‘गांधीवाद का युग’। इस युग में विज्ञान के विविध चमत्कार देखे जाते हैं। सर्वत्र हमें विज्ञान का प्रकाश ही दिखाई देता है। अतः इस युग को विज्ञान के साथ सम्बन्धित करना अच्छा लगता है। कार्ल मार्क्स ने पूँजीवाद का विरोध करके समाजवाद को प्रतिष्ठित किया। तब से आज तक समाजवाद को विभिन्न रूपों में विकसित हम पाते हैं और इसका वर्तमान युग पर गहरा प्रभाव है। फिर तो क्यों नहीं हम इस युग को समाजवादी युग कहें? महात्मागांधी जो आज के युग पुरुष माने जाते हैं, ने भारतवर्ष को तो स्वतन्त्रता दिलाई ही, विश्व के सभी गरीब और गुलाम लोगों को समुचित मार्ग प्रदर्शन करने की कोशिश की। अतः विश्व में गांधीजी के सिद्धान्तों के प्रभाव देखे जाते हैं और हम भारतवासी तो ‘गांधीवाद’ को ही अपना ‘श्रेय’ समझकर चल रहे हैं। यद्यपि यह बात कुछ और है कि हम इस सिद्धान्त को सही रूप में अपनाने में कहीं तक सफल हो रहे हैं?

अब सर्व प्रथम हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि धर्म क्या है? धर्म हमारे जीवन के लिए कितना महत्वपूर्ण है? तभी हम यह निर्णय कर सकेंगे कि आधुनिक युग के जो तीन रूप हैं उनसे धर्म बिलकुल अलग है अथवा इसका भी उनमें किसी न किसी रूप में समावेश है।

धर्म

पाश्चात्य विचारक गैलवे ने धर्म को परिभाषित करते हुए कहा है—‘धर्म वह है जिसमें अपने से परे किसी शक्ति के प्रति मानव श्रद्धा के द्वारा अपनी संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करके जीवन में स्थिरता प्राप्त करता है और जिस स्थिरता को वह उपासना और सेवा में अभिव्यक्त करता है।’^१

इस परिभाषा के अनुसार धर्म जिन तथ्यों से सम्बन्धित होता है, वे इस प्रकार हैं :

- (क) अपने से परे कोई शक्ति
- (ख) मानव की श्रद्धा
- (ग) संवेगात्मक आवश्यकताएँ

1. Religion is a man's faith in a power beyond himself whereby he seeks to satisfy emotional needs and gains stability of life, and which he expresses in acts of worship and service".

—G. Galloway, The Philosophy of Religion, P, 184

(घ) जीवन की स्थिरता

(ङ) जीवन की स्थिरता की अभिव्यक्ति-उपासना और सेवा के रूपों में ।

इनमें सबसे महत्वपूर्ण है—‘जीवन की स्थिरता’ । व्यक्ति इसकी ही उपलब्धि करता है और इसे ही अभिव्यक्ति प्रदान करता है । जीवन की स्थिरता तब प्राप्त होती है जब मनुष्य की संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है । संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति तब होती है जब व्यक्ति के मन में श्रद्धा होती है । श्रद्धा किसी उस शक्ति के प्रति होती है जो अपने से परे है । जीवन की स्थिरता का मतलब है जीवन की व्यवस्था जिससे सुख-शान्ति प्राप्त होती है । संवेगात्मक आवश्यकताएँ व्यक्ति के स्वभाव से सम्बन्धित होती हैं । अपने से परे किसी शक्ति के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए, इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि वह शक्ति कौन सी है ? वह परे शक्ति ईश्वर के रूप में अथवा अन्य किसी रूप में भी श्रद्धेय हो सकती है । इस प्रकार धर्म जीवन की स्थिरता को लक्ष्य बनाकर परे शक्ति के प्रति श्रद्धा के माध्यम से मानव के संवेगों की पूर्ति करता है । इससे यह प्रमाणित होता है कि धर्म मानवीय स्वभाव से सम्बद्ध है, तथा ईश्वरीय परिधि के भीतर अथवा बाहर रहने के लिए स्वतन्त्र है । कोई भी धर्मानुयायी इसके लिए बिल्कुल स्वतन्त्र है कि वह ईश्वर को परे शक्ति के रूप में ग्रहण करे अथवा नहीं ।

मसीह साहब ने धर्म की एक परिभाषा प्रस्तुत की है जिसमें उन्होंने विलियम केनिक (Kennick) एरिख फ्रॉम (Erich Fromm) एवं विलियम ब्लॉकस्टोन (Blockstone) के विचारों को समाहित करने का प्रयास किया है :

“धार्मिक विश्वास यह है जो किसी निष्ठा (Devotion) के विषय के प्रति सम्पूर्ण आत्मबन्धन (Commitment) के आधार पर जीवन की समस्याओं की ओर सर्वव्यापक रीति से व्यक्ति को अभिमुख (Oriented) करे ।”^२

यह परिभाषा समकालीन चिन्तकों की चिन्तन पद्धतियों के आधार पर बनाई गई है । इसमें जिन पक्षों पर बल दिया गया है, वे इस प्रकार हैं :

(क) निष्ठा, (ख) निष्ठा का विषय, (ग) आत्मबन्धन, (घ) जीवन की समस्याएँ, (ङ) व्यापक रीति ।

धार्मिक व्यक्ति में किसी के प्रति निष्ठा होनी चाहिए । उसमें सम्पूर्ण आत्म बन्धन होना चाहिए यानी निष्ठा आत्म बन्धन से परिपुष्ट होनी चाहिए और उसके आधार पर जीवन की समस्याओं का समाधान होना चाहिए । किन्तु समस्या समाधान करने की पद्धति को संकुचित नहीं बल्कि सर्वव्यापी होना चाहिए । इस परिभाषा में जीवन की समस्याओं के समाधान को प्रमुखता दी गई है । किन्तु इसमें भी यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि निष्ठा किसके प्रति होनी चाहिए ।

भारतीय परम्परा में यह माना गया है कि ‘धर्म’ शब्द ‘धृ’ धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है—‘धारण करना’ । अतः धर्म को इस रूप में परिभाषित किया जाता है—“धारयति इति धर्मः” अर्थात् जो हमें धारण करता है वही हमारा धर्म होता है । धारण करने से मतलब है—‘जीवन को धारण करना’ । जिस पर हमारा जीवन आधारित होता है वही हमारा धर्म होता है । जिससे हमारा जीवन व्यवस्थित होता है, वही धर्म है ।

2. Religious beliefs provide an all pervasive frame of reference or a focal attitude of orientation to life and induce a total commitment to an object of devotion.

—सामान्य धर्म दर्शन—पृ० २३ ।

भारतीय परम्परा में मानव जीवन की उपलब्धियाँ दो प्रकार की मानी गई हैं—लौकिक तथा पारलौकिक। लोक यानी समाज में रहते हुए सुख शान्ति प्राप्त करना लौकिक उपलब्धियाँ मानी जाती हैं तथा सांसारिक जीवन के बाद अर्थात् मृत्यु हो जाने पर स्वर्ग प्राप्त करना, मोक्ष पाना पारलौकिक उपलब्धियाँ समझी जाती हैं। धर्म लौकिक जीवन में तो सहायक होता ही है, पारलौकिक जीवन के लिए भी सहायता प्रदान करता है। इसलिए हमारे यहाँ पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को महत्त्व दिया गया है। इनके माध्यम से व्यक्ति अपने लौकिक जीवन की तो समुचित व्यवस्था कर ही लेता है, साथ ही पारलौकिक जीवन के लिए भी साधना कर लेता है।

धर्म विश्वास है, आस्था है। इसमें तर्क-वितर्क को कम महत्त्व दिया जाता है। धार्मिक व्यक्ति गुरु के वचनों को सुनता है अथवा शास्त्रों में पढ़ता है और उन्हें सत्यरूप में ग्रहण कर लेता है। प्रमाण के क्षेत्र में इसे शब्द-प्रमाण अथवा श्रुतज्ञान के रूप में स्थान मिला है।

देश और काल के अनुसार धर्म में परिवर्तन देखे जाते हैं। चूँकि धर्म व्यक्ति के जीवन को धारण करता है, इसलिए ठण्ड तथा गर्म प्रदेशों में रहने वाले लोगों के धर्म बिल्कुल एक ही हों, ऐसा नहीं हो सकता। गर्म प्रदेश के वासियों के धर्माचार में नित्य स्नान करके अर्चना-वन्दना करने का विधान देखा जाता है। किन्तु यही आचार यदि ठण्डे प्रदेश के रहने वालों के लिए भी निर्धारित हो, तब तो यह धर्माचार जीवन का पोषक नहीं, बल्कि नाशक साबित होगा। अहिंसा को परम धर्म मानते हुए मांसभक्षण का विरोध किया जाता है, किन्तु जंगल में रहने वालों के लिए यदि यही धर्म-व्यवस्था हो, तब तो वे भूखे मर जायेंगे और धर्म उनके लिए घातक सिद्ध होगा।

प्राचीन काल में भारतीय समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था थी। चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र में बैठने-उठने, खान-पान, शादी आदि के बहुत ही कठिन नियम थे, जिन्हें न मानने पर समाज व्यक्ति को कठोर दण्ड देता था। आज भी वर्णों के विविध रूप देखे जाते हैं, किन्तु प्राचीन नियमों को लेकर चलने वाला व्यक्ति आज के समाज में रह नहीं सकता। इसी तरह समयानुसार नियमों के अपवादों या परिवर्तनों के कारण ही जैनधर्म में दिग्म्बर तथा श्वेताम्बर, बौद्धधर्म में हीनयान तथा महायान, ईसाई धर्म में कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट, इस्लाम धर्म में शिया और सुन्नी शाखाएँ बनीं। काल के अनुसार यदि धर्म में परिवर्तन न हो तो धर्म हमें क्या धारण करेगा, हम ही उसे धारण करने में असमर्थ हो जायेंगे।

धर्म के मूल्य

सत्य, शिवं तथा सुन्दरं सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वमान्य मूल्य हैं। इन्हें हम धर्म के मूल्य कहें अथवा मानव जीवन के मूल्य कहें। इनसे अलग होकर मानव जीवन, मानव जीवन नहीं रह जाता और न कोई धर्म धर्म बन पाता है। ये तीन मूल्य एक दूसरे के पूरक हैं। जो सत्य होता है, वह शिव यानी कल्याण रूप तथा सुन्दर होता है। जो कल्याणकारी होता है, वह सत्य होता है, सुन्दर होता है तथा जो सुन्दर होता है, वही कल्याणकारी और सत्य होता है। कभी-कभी सामान्य जीवन में इनके कुछ अपवाद भी देखे जाते हैं, किन्तु यदि सही अर्थ में मूल्य के रूप में इन्हें समझने की कोशिश करेंगे, तो अवश्य ही इन्हें एक दूसरे के पूरक के रूप में पायेंगे। चूँकि ये ही परम मूल्य हैं, इसलिए जहाँ कहीं भी ये होते हैं, वही पर धर्म होता है। धर्म की सुदृढ़ता इन्हीं पर निर्भर करती है।

विज्ञान और धर्म

आज के वैज्ञानिक चमत्कारों को देखकर धार्मिक आस्थाएँ डगमगाने लग जाती हैं और धार्मिक व्यक्ति किकर्तव्य विमूढ़-सा हो जाता है। चाँद जिसे वैदिक परम्परा ही नहीं, बल्कि इस्लाम परम्परा में भी महत्त्व दिया गया है, साहित्य

जिसकी सुन्दरता का बखान करते नहीं थकता, उस चाँद पर आज के वैज्ञानिक छलांगें लगा रहे हैं। जन्म और मृत्यु जिनसे जीवन की सीमाएँ निर्धारित होती हैं, उन्हें भी आज का विज्ञान नियन्त्रित करने पर लगा है। जन्म और मृत्यु की दरें घटायी जा रही हैं। अब तो जन्म के लिए माँ का गर्भ आवश्यक नहीं रह गया है, उसके लिए तो परखनली ही पर्याप्त है। वैज्ञानिकों ने अपने ही जँसा मनुष्य (रोबोट) भी तैयार कर लिया है, जो प्रायः सभी मानवीय कार्यों को कुशलतापूर्वक कर लेता है। आत्मा या चेतना जिसे किसी इन्द्रिय से जान पाना मुश्किल है, उसे भी वैज्ञानिकों ने शीशे में बन्द करने का प्रयास किया है। सुखा और बड़ की स्थितियों में ईश्वर की दुहाई दी जाती थी, किन्तु अब इनके लिए भी ईश्वर की जरूरत नहीं होगी। विज्ञान सभी मानव क्षेत्रों में पहुँच चुका है। धर्म में प्रधानता पाने वाला ईश्वर महत्त्वहीन सा जान पड़ता है। ऐसे तो निरीश्वरवादी धर्मों ने पहले ही ईश्वर को अनावश्यक घोषित कर दिया है, परन्तु विज्ञान ने तो ईश्वर की स्थिति को और नाजुक बना दिया है। बी० एन० हेफर ने लिखा है :

“ईश्वर मानव के लिये अनावश्यक और लुप्तप्राय हो गया है।”³

इसमें कोई शक नहीं कि आज का मानव अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों को देखकर इतरा रहा है और उसे अपनी गरिमा के सामने ईश्वर तथा धर्म तुच्छ दिखाई पड़ रहे हैं। किन्तु जिस परमाणु शक्ति की खोज ने उसे विकास की चोटी पर पहुँचा दिया है उसी में मानव का सर्वनाश भी निहित है। विज्ञान आकाश में अपना विश्राम स्थल बना सकता है पर वह स्थायी रूप लेने के बजाय ध्वस्त भी हो सकता है और मानव के लिये विश्राम दाता न बनकर प्राणघातक भी सिद्ध हो सकता है। फिर तो आज का विज्ञान क्या बता सकता है कि वह किधर जा रहा है—आकाश की ओर या मृत्यु की ओर? मानव जीवन के दो पक्ष हैं—बुद्धि तथा पशुता। विज्ञान तरह-तरह के प्रयोगों के आधार पर मानवीय बुद्धि को विकसित कर रहा है जिससे मानव जीवन एकांगी होता जा रहा है। मानव में छिपी हुई पशुता आज के विज्ञान के कारण बलवती होती जा रही है। जिस तरह एक पशु दूसरे पशु के खाद्य को बलात् खा जाना चाहता है उसी तरह आज का मानव अपना विकास और दूसरे का विनाश चाह रहा है जिसके लिए वह युद्ध के नए-नए उपकरणों के निर्माण एवं संकल्प में लगा है। उसकी पशुता बढ़ती जा रही है और मानवता घटती जा रही है। मनुष्य को पशु से मानव यदि कोई बना सकता है, तो वह धर्म ही है। धर्म में कोई प्रयोग या परीक्षण नहीं होता। इसका सम्बन्ध जीवन के आन्तरिक पक्ष से है। आन्तरिक पक्ष ही विकसित होकर जीवन को समग्रता प्रदान करता है। विज्ञान की उपलब्धियाँ मानव जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध होती हैं किन्तु उनके दुस्प्रयोग भी उनके साथ होते हैं। जब तक मनुष्य में धर्म की उदारता नहीं आती है, तब तक वह अपने को विज्ञान के दुस्प्रयोग से नहीं बचा सकता है। अतः यद्यपि विज्ञान और धर्म के अलग-अलग क्षेत्र हैं, पर दोनों एक दूसरे के सहयोगी हो सकते हैं, पूरक हो सकते हैं। और आज का मानव सिर्फ विज्ञान को ही न अपनाए बल्कि धर्म का भी अनुगमन करे तो उसके लिए श्रेयष्कर है।

समाजवाद और धर्म

पाश्चात्य विचारक रोशन ने कहा है—“समाजवाद उन प्रवृत्तियों का समर्थक है जो सार्वजनिक कल्याण पर जोर देती हैं।”^४ यह सिद्धान्त समाज में एक स्तर तथा समानता लाने का प्रयास करता है। किन्तु समाजवाद के

3. God has been edged out from every human sphere of life and he has become obsolete.

—सामान्य धर्म दर्शन—पृ० ४६।

४. समाजदर्शन की भूमिका—डॉ० जगदीश सहाय श्रीवास्तव, पृ० २७८।

समर्थकों में दो प्रकार के विचारक देखे जाते हैं। कुछ समाजवादी विचारकों की यह मान्यता है कि समाजवाद को हिंसात्मक तरीके से ही लाया जा सकता है। कुछ दूसरे प्रकार के विचारक यह मानते हैं कि हिंसात्मक ढंग से लाया हुआ समाजवाद उतना अच्छा नहीं होता जितना कि अहिंसात्मक ढंग से लाया हुआ समाजवाद होता है। अतः अहिंसात्मक पद्धति से ही समाजवाद की स्थापना होनी चाहिए। जर्मनी के एक विचारक न्यूखनर ने कहा था— 'ओपड्रियों में सुख-शान्ति हो और राज-प्रासादों का विकास हो।'^५ स्वयं कार्ल मार्क्स ने भी हिंसात्मक पद्धति का ही समर्थन किया है। धर्म को तो उन्होंने जहर कहा है। जिस प्रकार जहर प्राणघातक होता है, उसी प्रकार धर्म भी समाज के लिए विनाशक है। समाज के एक पक्ष का नाश करके दूसरे पक्ष का विकास करना निश्चित ही सामाजिकता को कमजोर करने की बात है। समाजवाद तो समानता लाना चाहता है। यदि किसी एक पक्ष को नष्ट कर दिया जाता है, तो समाजवाद की मान्यता ही समाप्त हो जाती है। कार्ल मार्क्स ने यदि धर्म को जहर कहा है, तो इससे ऐसा समझना चाहिए कि संभवतः उसकी दृष्टि धार्मिक रूढ़ियों की ओर थी, जिनसे धर्म या समाज का विकास नहीं बल्कि ह्रास होता है। क्योंकि धर्म तो एक व्यवस्था है, एक पद्धति है जिससे अलग नहीं हुआ जा सकता।

भारतीय परम्परा में सामाजिक व्यवस्था का आधार तो धर्म ही है। ऋग्वेद में समाज को एक शरीर के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसके चार अंग माने गए हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ये वर्ण एक दूसरे के पूरक समझे गए हैं और इनके सहयोग से समाज की सम्पूर्णता विकसित होती है। भारतीय परम्परा में कहीं भी ऐसा विधान नहीं हुआ है कि एक का नाश करके दूसरे का विकास हो। आज के भारतीय समाजवादी—आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ० राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण आदि अहिंसवादी समाजवाद के समर्थक हैं। जहाँ अहिंसा है, वहाँ धर्म है। प्रसिद्ध उक्ति है—'अहिंसा परमोधर्मः' अर्थात् अहिंसा ही सर्वोत्कृष्ट धर्म है। धर्म और समाज के महत्त्वों को देखते हुए पं० दीनदयाल उपाध्याय ने कहा है :

'हमें धर्मराज्य, लोकतन्त्र, सामाजिक समानता और आर्थिक विकेन्द्रीकरण को अपना लक्ष्य बनाना होगा। इन सबका सम्मिलित निष्कर्ष ही हमें एक ऐसा जीवन-दर्शन उपलब्ध करा सकेगा जो आज के समस्त झंझावातों से हमें सुरक्षा प्रदान कर सके। आप इसे किसी भी नाम से पुकारिये—हिन्दुत्ववाद, मानवतावाद अथवा अन्य कोई नयावाद, किन्तु यही एकमेव मार्ग भारत की आत्मा के अनुरूप होगा और जनता में नवीन उत्साह संचारित कर सकेगा।'

गांधीवाद और धर्म

गांधीजी सत्य और अहिंसा के पुजारी थे। उनके अनुसार सत्य ईश्वर है या ईश्वर सत्य है और अहिंसा के मार्ग पर चलकर ही ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है। गांधीजी पर जैन साधक श्रीमद्राजचन्द्र, पाश्चात्य विचारक थोरियो (Thoreau), रस्किन (Ruskin) तथा टॉल्स्टॉय (Tolstoy) के प्रभाव थे। धर्म तो उनकी चिन्तनपद्धति का आधार स्तम्भ है। किन्तु धर्म का प्रयोग उन्होंने कभी भी किसी संकुचित अर्थ में नहीं किया। उन्होंने कहा है— 'धर्म से मेरा तात्पर्य किसी औपचारिक या व्यावहारिक धर्म से नहीं है, वरन् उस धर्म से है जो सभी धर्मों का मूल है और जो हमें स्रष्टा का साक्षत्कार कराता है'^७। उनका विश्वास धार्मिक सहिष्णुता तथा धर्मनिरपेक्षता में था। गांधीजी

५. वही पृ० २७८।

६. पं० दीनदयाल उपाध्याय, राष्ट्र चिन्तन पृ० ७४।

समाजदर्शन की भूमिका—पृ० २८४।

७. वही पृ० ३६७।

के मन में सभी धर्मों के प्रति आदर का भाव था। इसीलिए उन्होंने कहा है—“मैं वेदों के एकमात्र ईश्वर में विश्वास नहीं करता। मेरा विश्वास है कि बाइबिल, कुरान और जेन्द-अवस्ता में उतनी ही ईश्वरीय प्रेरणा है जितनी कि वेदों में पायी जाती है।”^{१०} उनकी प्रार्थनासभा में प्रायः सभी धर्मों की प्रार्थनाएँ होती थी। धर्म के सम्बन्ध में उनका यह विश्वास था कि यदि कोई व्यक्ति किसी एक धर्म को अच्छी तरह से समझकर उसका अनुगमन करता है तो उसे उसके मन में अन्य धर्मों के प्रति किसी प्रकार का दुर्भाव नहीं उत्पन्न हो सकता है। इसलिए उन्होंने कहा है कि यदि हिन्दू को अपने धर्म से असन्तोष है, तो वह उसका अध्ययन करके एक अच्छा हिन्दू बने। वे अपने विषय में कहा करते थे कि मैं एक कट्टर हिन्दू हूँ, इसीलिए एक ईसाई भी हूँ, एक मुसलमान भी हूँ, एक जैन और बौद्ध भी हूँ।

गाँधीजी की धर्मनिरपेक्षता का कुछ नासमझ लोगों ने यह भा अर्थ लगाया है—धर्म की अपेक्षा नहीं या धर्म की कोई आवश्यकता नहीं। भला, सत्य और अहिंसा का अनुयायी धर्म से अपने को विमुख रखेगा? पर कुछ लोग अपनी भूल को छुपाने के लिए गाँधीजी के कथनों के अर्थ न प्रस्तुत करके अनर्थ ही प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में, गाँधीजी एक धार्मिक व्यक्ति थे और धर्म को अपने विचारों में उन्होंने सच्चा और सार्थक रूप दिया है।

इस तरह हम देखते हैं कि आधुनिक युग धर्म से अपने को अलग करके अपना कल्याण नहीं कर सकता। यह युग चाहे विज्ञान को अपनाये अथवा समाजवाद को या गाँधीवाद को या अन्य किसी वाद को, परन्तु धर्म तो इसके साथ रहेगा। क्योंकि धर्म एक आस्था है, एक व्यवस्था है, जीवन का आधार है। जो भी हमारे जीवन की व्यवस्था करता है, जिसपर हमारा जीवन आधारित है, वही हमारा धर्म है। जीवन की व्यवस्था यदि गाँधीवाद से होती है तो गाँधीवाद धर्म है, यदि जीवन की व्यवस्था समाजवाद या साम्यवाद से होती है, वही धर्म है। हाँ, इतनी बात जरूर है कि धर्म को काल के अनुसार अपने में परिवर्तन लाना होगा। प्राचीनकाल में प्रतिपादित धर्म को हम यदि आधुनिक युग में बिना किसी परिवर्तन के लाना चाहेंगे तो, धर्मानुगमन असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य होगा। जैनों का अनेकांतवाद इस दिशा में हमारा परम मार्ग-दर्शक होगा।

वर्तमान जीवन के लिये,
प्रशंसा, सम्मान और पूजा के लिये,
जन्म, मरण और मोचन के लिये,
दुःख प्रतिकार के लिये,
कोई साधक विविध काय के जोवों की हिंसा
करता है, करवाता है या अनुमोदन करता है,
वह उसके लिये अहित और
अबोध के लिये होती है।

—आचारारंग, शास्त्र परिज्ञा